REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

# ''सरगुजा क्षेत्र के लघुवनोपज संग्राहक श्रमिकों का वनोपज राष्ट्रीयकरण के पूर्व एवं पश्चात शोषण का इतिहास एवं वर्तमान चुनौतियाँ''

अभिषेक अग्रवाल[1] , डॉ. घनश्याम दुबे[2]
[1]शोध छात्र (इतिहास विभाग) गुरू घासीदास (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय , बिलासपुर (छ.ग.)
[2]सहायक प्राध्यापक (इतिहास विभाग) गुरू घासीदास(केन्द्रीय) विश्वविद्यालय बिलासपुर (छ.ग.)

## सारांश

सरगुजा क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्य के उत्तर क्षेत्र में स्थित वन सम्पदा बहुल क्षेत्र है। वनों की बहुलता के कारण सरगुजा क्षेत्र को छत्तीसगढ़ की ''उत्तरी हरित पेटी'' कहा जाता है। यहाँ विभिन्न प्रकार के वनोत्पाद पाए जाते हैं, जिससे क्षेत्र के निवासियों का आर्थिक जीवन संचालित होता है। इसमें इमारती लकड़ी, साल, सागौन, बीजा आदि महत्वपूर्ण हैं। क्षेत्र लघु वनोपज में तेंदूपत्ता, साल, बीजा, हर्रा, गोंद, कत्था आदि पाए जाते है। प्रचूर वन सम्पदा से समृद्ध होने के बाद भी इस क्षेत्र के वनोत्पाद संग्राहक श्रमिकों का जीवन संघर्षमय एव निम्न रहा है।

## प्रस्तावनाः–

तेन्दूपत्ता सरगुजा क्षेत्र का महत्वपूर्ण लघु वनोत्पाद है, जिसका उपयोग राज्य में बीड़ी बनाने में किया जाता है। प्रारंभ में ब्रिटिश काल में रियासतों द्वारा एवं स्वतंत्रता बाद तेंदूपत्ता श्रमिकों का वनोपज ठेकेदारो, बिचौलियों एवं व्यापारियों द्वारा व्यापक शोषण किया जाता था, यद्यपि शासन द्वारा लघु वनोत्पादों के राष्ट्रीयकरण एवं उसके पश्चात विभिन्न नीतियों के निर्माण से लघु वनोत्पाद श्रमिकों के शोषण में कुछ कमी आयी है, किंतु अभी भी उनका शोषण किसी ना किसी रूप में जारी है।

## सरगुजा क्षेत्र के लघुवनोपज संग्राहक श्रमिकों का वनोपज राष्ट्रीयकरण के पूर्व शोषण–

सरगुजा क्षेत्र के लघु वनोपज के संग्राहक श्रमिकों के शोषण का एक लम्बा इतिहास रहा है। क्षेत्र के वनोत्पाद श्रमिकों के शोषण का अन्त नहीं हुआ है तथा आज भी उनका विभिन्न स्तरों पर शोषण हो रहा है, यद्यपि इसका रूप परिवर्तित हो गया है। वनोपज श्रमिकों का वनोत्पाद व्यापार के लाभ में कोई अधिकार नहीं है।

''आदिवासी अर्थव्यवस्था अनादिकाल से लघु वनोपज पर आश्रित रही है। वन प्रबन्ध के पहले दौर में आदिवासियों का लघु वनोपज पर कहीं निजी उपयोग के लिए और कहीं विक्रय के लिए भी उनके अधिकार को स्वीकार किया गया था।''[1] सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न वन नीतियों के द्वारा एवं वनोत्पाद व्यापार में ठेकेदारों एवं बिचौलियों के द्वारा वनोपज श्रमिकों के परम्परागत अधिकारों का हनन किया गया है।

वनोपज संग्राहक श्रमिकों का शोषण ऐतिहासिक काल से होता रहा है। स्वतंत्रता से पूर्व रियासत काल में सरगुजा रियासत में वनोपज श्रमिकों पर वनोपज संग्रहण के लिए विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गए थे तथा सरगुजा रियासत में रियासत के अन्तर्गत तेन्दूपत्ता संग्रहण एवं विक्रय हेतु ठेका दिया जाता था। वनोपज ठेकेदार वनोपज संग्राहक श्रमिकों का विभिन्न तरीकों से शोषण करते थे। उस काल में

श्रमिकों के शोषण का कोई अन्त नहीं था।

''रियासत में लकड़ी काटने के लिए अनुमति लेना आवश्यक था क्योंकि लकड़ी काटने, वनों में मवेशी चराने तथा जंगली जानवरों को मारना प्रतिबन्धित था किन्तु यहाँ के निवासी फलदार वृक्षों से फल लेने के लिए स्वतंत्र थे। जिसका मुख्य कारण जंगली वृक्षों का फल इनका भोज्य पदार्थ था। आज भी इसका उपयोग उनके द्वारा किया जाता है। एक ओर जहाँ खैर के वृक्ष से कत्था तैयार किया जाना यहाँ प्राचीन परम्परा रही है वहीं दूसरी ओर बीड़ी निर्माण हेतु तेन्दूपत्ते का उपयोग किया जाता है, जिसकी मात्रा यहाँ अधिक पायी जाती है। रियासत काल में लाख की फसल को क्रय करने तथा इसकी निकासी हेतु ठेका दिया जाता था जिससे राज्य को अच्छी आमदनी होती थी।''[2] ठेका प्रणाली से रियासत को अत्यधिक आमदनी होती थी किन्तु इससे वनोपज संग्रहण व्यापार में ठेकेदारो द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता था, जिससे श्रमिकों का जीवन स्तर अत्यधिक निम्न बना रहा।

रियासती काल में वनोत्पाद व्यापार में अंग्रेजों के हस्तक्षेप के पश्चात लघु वनोपज संग्राहक श्रमिकों की स्थिति में और भी अधिक गिरावट आयी। ''कालान्तर में जब अंग्रेजों की वक्रदृष्टि भारत की बहुमूल्य वन सम्पदा पर गई तो उस बल, शासन द्वारा आदिवासी के एकाधिकार पर अतिक्रमण प्रारम्भ हो गया। पहले तो मुख्य वन सम्पदा जिसमें बहुमूल्य इमारती लकड़ी तथा असंख्य वन्य पशुओं के रूप में थी, उस पर से आदिवासी का अधिकार छीन लिया गया और शासन ने इन सबकों अपनी आमदनी में वृद्धि करने और आमोद–प्रमोद को साधन मान लिया। जब इससे भी शासन की आय में वृद्धि करने की पिपासा समाप्त नहीं हुई, तो लघु वनोपज पर उसका ध्यान आकर्षित हुआ। जिसका भी परिणाम यह हुआ कि, आदिवासियों का शोषण ठेकेदार, शासन और पुलिस के द्वारा प्रारम्भ हुआ। बिचौलिये और ठेकेदार आदिवासियों को वनोपज के संग्रहण के लिये कम से कम मजदूरी देते और अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त करते चले गए। अन्य शब्दों में आदिवासी वनोपज के एक प्रकार के रक्षक और मालिक थे, वे अब शोषित मजदूरों की श्रेणी में पटक दिये गये।''[3]

सरगुजा क्षेत्र के वनोपज श्रमिकों के शोषण का चक्र स्वतंत्रता पश्चात भी चलता रहा। वनोत्पाद व्यापार में रियासत काल से चली आ रही ठेकेदारी व्यवस्था स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जारी रहने के कारण वनोपज व्यापार में वनोपज संग्राहक श्रमिकों का शोषण जारी रहा। सरगुजा क्षेत्र में वनोपज व्यापार में वनोपज संग्राहक श्रमिकों के शोषण के चरण में वनों से प्राप्त बहुमूल्य सम्पदा के लिए व्यापारी, ठेकेदारों और बिचौलियों द्वारा भारी शोषण किया जाता था। लघु वनोपज जैसे चिरौंजी, घी, शहद आदि बहुमूल्य वस्तुऐं वनोपज श्रमिको से व्यापारी नमक के भाव खरीद लेते थे और उसे ऊँची कीमत में शहरों के बाजारों में बेचकर भारी मुनाफा कमाते थे। सरगुजा क्षेत्र के श्रमिकों को व्यापार में कड़ी मेहनत का मूल्य नगण्य था।

''कृषि के अतिरिक्त जनजातियों का आर्थिक आधार वनों से प्राप्त सामग्री है। आदिवासी वनों से इन सामग्रियों को एकत्रित करते है और साप्ताहिक बाजार में इनके बदले आवश्यकता की वस्तुये खरीदते हैं। अधिकतर आदिवासी तौल एवं वास्तविक मूल्य से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत सस्ते में अपनी वस्तुऐं दे देते हैं। व्यापारी इनकी अनभिज्ञता का लाभ उठाते हैं। अतः जल्दी ही ये ऋण के बोझ से दब जाते हैं। परिणामतः अनेक बार इन्हें पर्याप्त भोजन भी प्राप्त नहीं होता ।

ऋणग्रस्तता आदिवासियों की अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग बन गया है। बस्तर के अतिरिक्त सभी जनजातियो में ऋणग्रस्तता गम्भीर समस्या है। परिणामतः ये लोग बंधक मजदूर हो जाते हैं। जिससे ऋणदाता इनका शोषण करता रहता है। हाट में आने वाले व्यापारी भी इन्हें ऋण के बन्धन में बांध लेते है। जिससे भी इन्हें सरलता से मुक्ति नहीं मिलती।''[4]

सरगुजा क्षेत्र के प्रमुख लघु वनोत्पाद तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों के शोषण का एक लम्बा काल रहा है। सरगुजा क्षेत्र में तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का रियासत काल एवं उसके बाद भी अत्यधिक शोषण होता रहा, वनोपज व्यापार मे उनकी भूमिका मात्र संग्राहक की ही रह गई। तेन्दूपत्ता व्यापार में वन ठेकेदारों का ऐसा जाल बिछा हुआ था कि तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का प्रत्येक चरण में शोषण होता रहा था।

''राज्य में जैसे–जैसे बीड़ी का व्यवसाय फलने–फूलने लगा जंगलों से तेन्दूपत्ते का महत्व और बढ़ने लगा। राज्य से बाहर इसके निर्यात में भारी वृद्धि होने लगी। तेन्दूपत्ता व्यापारियों ने राज्य में एक ऐसी व्यवस्था कायम की कि नाममात्र की मजदूरी देकर आदिवासियों से तेन्दूपत्ता तुड़वाया जाने लगा। अशिक्षित और निरीह आदिवासी जो 20 तक गिनती नहीं जानता, इस व्यवसाय में ठगे जाते रहे और शोषण कुचक्र चलते रहे।''[5]

सरगुजा क्षेत्र में वनोपज संग्राहक श्रमिको के शोषण का एक पूरा चक्र बना होता था, जिसमें वनोपज श्रमिक फंसा होता था। तेन्दूपत्ता के व्यापार में ''व्यापारी फसल आने से पहले ही जंगलों में अपना जाल बिछा लेते हैं। उनके एजेंट गांव–गांव में फैल जाते हैं। फड़ों के माध्यम से आदिवासियों को कुछ एडवांस रकम देकर उन्हें एक प्रकार का बंधुआ बना लेते हैं ताकि वे समय पर ठेकेदार अथवा व्यापारी का काम करें। आदिवासी इतने भोले हैं कि यदि किसी ने थोड़ा सा पैसा देकर उन्हें काम में लगा दिया तो वे फिर किसी कीमत में अन्य जगह काम करने नहीं जायेंगे। आदिवासियों की इस परम्परा का, इस ईमानदारी का व्यापारी भरपूर फायदा उठाते हैं। जब तक तेन्दूपत्ते का काम चलता है, ठेकेदार या व्यापारी यह सुनिश्चित करते हैं कि अग्रिम की कुछ राशि आदिवासी मजदूर के ऊपर बकाया रहे। आदिवासियों को काम में लगानें के लिये उन्हीं के बीच का मुखिया, पटेल या अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों का उपयोग होता है। उन्हीं के माध्यम से लाखों आदिवासियों पर बिना किसी निरीक्षण के व्यापारी अपना पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।''[6]

तेन्दूपत्ता संग्राहक श्रमिकों का वनोपज व्यापार में तेन्दूपत्ता ठेकेदारों, फड़दारों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से शोषण किया जाता था। फड़दार पत्तियों की संख्या, गुणवत्ता, आदि के आधार पर श्रमिकों के साथ बेईमानी करते थे। वनोपज श्रमिकों को इस व्यापार में अपने श्रम का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता था।

''जब सीजन में पत्ते की तुड़ाई होती है तो आदिवासी पत्तों की गड्डीयाँ बनाकर लाते हैं। गड्डी में एक सौ पचास पत्ता होना चाहिए, ऐसी 1000 गड्डीयों को एक मानक बोरा के बराबर माना जाता है। पाँच पत्ता कम या अधिक होने को महत्व नहीं दिया जाता। परन्तु आदिवासी गिनती ही नहीं जानते। आदिवासी अपने मोटे अंदाज से ही गड्डीयाँ बनाते जाते हैं। अक्सर गड्डीयों में पत्ते अधिक ही होते हैं। आदिवासी श्रमिक सूर्योदय के पूर्व से तथा दोपहर तक जंगलों से पत्ते तोड़ते हैं तथा दोपहर के बाद पत्तों की गड्डीयाँ बनाते हैं। गड्डी पतली हुई तो फड़मुंशी वापस भी कर सकता है। फड़मुंशी पत्तों की गड्डीयाँ लेते सेमय बहुत हेराफेरी करता है। पत्तों मे खामियाँ निकाली जाती हैं, जैसे पत्ता दागदार है, आकार में छोटा है, निकाल दी जाती है और आदिवासी श्रमिकों को उनकी तुड़ाई का भुगतान नहीं मिलता, परन्तु ऐसे सभी पत्तों की गड्डीयाँ ठेकेदार स्वयं रख लेता है और उसे बाजार में बेच देता है।''[7]

सरगुजा क्षेत्र के वनोपज श्रमिकों का फड़दार द्वारा उनके वेतन भुगतान में भी उनसे बेईमानी की जाती थी तथा उनका शोषण किया जाता था। ठेकेदार उनके अशिक्षित होने का लाभ उठाकर उन्हें कम मजदूरी देता था। तेन्दूपत्ता श्रमिक शासन की न्यूनतम वेतन जानकारी के अभाव, अशिक्षा एवं गैर जागरूकता के कारण इस व्यापार में ठगा जाता था तथा उसका जीवन स्तर निम्न बना हुआ था।

''आदिवासियों को दैनिक वेतन के आधार पर रखा जाता है। पर भुगतान साप्ताहिक होता है। अतः जब सप्ताह के अन्त मे गड्डियों का टोटल लगाया जाता है तो आदिवासी फिर बेवकूफ बनता है। पुनः गिनती में हेराफरी की जाती है। तेन्दूपत्ते के व्यापार में ठेकेदारों को ऐसा जाल बिछा होता है कि आदिवासी कदम–कदम पर ठगा जाता है। पत्तो का ग्रेडेशन करना हो, पत्तों का सुखाना हो या बारों में भरना, नाम मात्र का पैसा देकर मुफ्त के भाव यह सब काम करवा लिया जाता है। इस कुचक्र में कई कर्मचारी भी शामिल हो जाते हैं तथा उनका आर्थिक शोषण होता है।''[8]

## मध्यप्रदेश (अविभाजित) शासन द्वारा लघुवनोपज का राष्ट्रीयकरण–

वनोपज व्यापार में वनोपज संग्राहक श्रमिकों के शोषण को देखते हुए भारत सरकार द्वारा गठित ढेबर आयोग ने वनोपज व्यापार से बिचौलियो को हटाने का सुझाव दिया था। ''ढेबर आयोग (1961) ने वनोपजों के महत्व को देखते हुए वनोपज व्यवसाय से बिचौलियों को हटाये जाने के लिए देश की सरकार द्वारा स्पष्ट नीति बनाए जाने पर जोर दिया तथा वनोपजों के प्रसंस्करण में आदिवासियों का अधिक रोजगार दिलाये जाने पर भी बल दिया था क्योंकि वनोपजों के मूल स्वरूप तथा प्रसंस्करण स्वरूप के मूल्य में अंतर बहुत अधिक होता है।''[9]

आदिवासी हितो से सम्बन्धित सुझाावों हेतु केन्द्र सरकार द्वारा गठित हरि सिंह कमेटी का भी स्पष्ट सुझाव था कि वनोपज व्यापार से बिचौलियो की समाप्ति होनी चाहिए। व''न क्षेत्रों में आदिवासी अर्थव्यवस्था पर गठित हरि सिंह कमेटी (1967) ने भी वनोपज संग्रहण विपणन से ठेकेदारों एवं व्यापारियों को हटाये जाने तथा इस कार्य को आदिवासियों से ही कराए जाने पर बल दिया, जिससे उन्हें जीविका का साधन वर्ष भर प्राप्त हो

सके। कमेटी ने यह भी कहा कि शासन की आय उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि आदिवासियों का कल्याण।''[10]

लघुवनोपज संग्रहण व्यापार में वनोपज संग्राहक श्रमिकों के शोषण एवं विभिन्न आयोगों की सिफारिशों के आधार पर वनोपज व्यापार से ठेकेदारों, फड़दारों, व्यापारियों, बिचौलयों की समाप्ति के लिए ''मध्यप्रदेश सरकार ने 28 नवंबर 1964 को 'मध्यप्रदेश तेंदूपत्ता अधिनियम' लागू करके राज्य स्तर पर तेंन्दूपत्ते के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किर लिया।''[11]

''उक्त अधिनियम की सफलता से प्रभावित होकर वन उपज व्यापार विनियमन अधिनियम 1969 लागू किया गया, क्योकि राज्य के आदिवासी तथा पिछड़े हुए लोगों को जिनकी जीविका का मुख्य साधन वनोपज संग्रहण ही है। ठेकेदारों तथा मध्यस्थ व्यक्तियों से पर्याप्त प्रतिलाभ नहीं मिल पाता था एवं अधिलाभ का अधिकांश भाग ठेकेदारों तथा अन्य मध्यस्थ व्यक्तियों द्वारा हड़प लिया जाता था। इस अधिनियम के पारित हो जाने से तेन्दूपत्ता के साथ गोंद, हर्रा और सालबीज का भी एकाधिकार शासन के पास आ गया।''[12]

''तेन्दूपत्ता राष्ट्रीयकरण के पश्चात मध्यप्रदेश सरकार द्वारा 21 जून 1969 को लघुवनोपज हर्रे एवं गोंद का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इसके बाद 1 सितंबर 1970 को सरगुजा तथा छत्तीसगढ़ के विभिन्न जिलो में साल बीज का भी राष्ट्रीयकरण कर उसका एकाधिकार प्राप्त कर लिया गया।''[13]

## सरगुजा क्षेत्र के लघुवनोपज संग्राहक श्रमिकों का वनोपज राष्ट्रीयकरण के पश्चात भाोशण–

मध्यप्रदेश शासन ने वर्ष 1964 में मध्यप्रदेश तेंदूपत्ता अधिनियम' कानून पारित कर राज्य में मुख्य वनोपज व्यवसाय पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था। इस कानून के अंतर्गत तेन्दूपत्ता संग्रहण के लिए मध्यप्रदेश राज्य विपणन संघ अथवा निजी क्षेत्र के व्यापारियों को एजेन्ट नियुक्त किया गया। वर्ष 1965–1968 के बीच वनोपज व्यवसाय में गरीब श्रमिकों का शोषण न हो, उन्हें श्रम का उचित प्रतिफल मिले, यह प्रयास शासन द्वारा होता रहा। वनोपज राष्ट्रीयकरण के पूर्व तेन्दूपत्ता व्यवसाय शासन द्वारा नीलामी प्रथा पर आधारित था, जिसमें तेन्दूपत्ते के विभिन्न जंगलों की नीलामी होती थी। वनोपज राष्ट्रीयकरण के पश्चात राज्य शासन ने तेन्दूपत्ता नीति में परिवर्तन किया तथा उसके संग्रहण में केता–अभिकर्ता प्रणाली लागू की गई, किन्तु इस प्रणाली के दोष भी जल्द ही दिखाई देने लगे, इस व्यवस्था में अभी भी ठेकेदारी व्यवस्था लागू होने से तेन्दूपत्ता सहित अन्य लघुवनोपज व्यापार में श्रमिकों का शोषण बना रहा।

''मध्यप्रदेश में 1964 से 1979 तक तेन्दूपत्ता तथा गोंद, हर्रा और सालबीज का व्यापार उक्त अधिनियमों के अंतर्गत केता–अभिकेता प्रणाली से किया जाता रहा। परन्तु उक्त प्रणाली में यह अनुभव किया गया कि व्यापारी गण एकजुट होकर कम दाम देकर वनोपज का क्रय करते हैं साथ ही संग्रहित मात्रा का ठीक से हिसाब किताब भी नहीं रखा जाता। जिसके परिणामस्वरूप संग्रहण मे लगे आदिवासी और ग्रामीण मजदूरों का शोषण होता, काले बाजार की गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलता तथा राज्य सरकार को प्राप्त होने वाली राजस्व की हानि उठानी पड़ती।''[14]

इसके बाद 1980 से लागू एक पृथक प्रणाली के तहत एक निश्चित क्षेत्र का ठेका एक निश्चित राशि पर दिया जाने लगा। इस प्रणाली के तहत वन क्षेत्र से वनोपज की कितनी भी मात्रा ले जायी जा सकती थी। इन कदमो से सरकार की आय में लगातार वृद्धि हुई, लेकिन तेंदूपत्ता और अन्य तीन राष्ट्रीयकृत वनोपजो में ठेका व्यवस्था जारी रही, जिससे श्रमिको का शोषण होने की संभावना बनी रही।

इस पद्धति के अंतर्गत निविदा के माध्यम से व्यापारियों को जंगल के ठेके दिये जोन लगे। व्यापारी निविदा मूल्य का भुगतान करके अपनी इच्छानुसार कितनी भी मात्रा में अपने क्षेत्र के जंगलों से तेन्दूपत्ता संग्रहित करा सकते थे। इस पद्धति की यह कमी रही कि शासन को कम राजस्व प्राप्त हुआ क्योंकि जंगलों के ठेके के अनुमानित मूल्य पूर्व के थे एवं ठेका मूल्य का निर्धारण समय–समय पर नहीं किया जा सका एवं व्यापारी एवं ठेकेदारों द्वारा जंगलों में शाख–कर्तन अधिक कराकर अधिक से अधिक एवं उच्च गुणवत्ता का तेन्दूपत्ता इकट्ठा किया जाता रहा। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह रहा कि व्यापारियों द्वारा कम से कम से कम मजदूरी पर मजदूरों से तेन्दूपत्ता तुड़वाया जाता रहा एवं इस व्यापार में श्रमिक वर्गों का शोषण जारी रहा। श्रमिको के शोषण की यह व्यवस्था 1984 तक चलती रही।

''वनोपज संग्राहक श्रमिकों को उनके संग्रहण का उचित पारिश्रमिक दिलाने और संग्रहण का कार्य सहकारी समितियों के माध्यम से कराने के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मंत्री परिषद ने प्रदेश की लघु वनोपज के संग्रहण एवम् विपणन हेतु एक शीर्षस्थ संस्था का निर्माण का निर्णय लिया। इस निर्णय के अनुसार ''मध्यप्रदेश राज्य लघु वनोपज व्यापार एवम् विकास सहकारी संघ मर्यादित भोपाल'' का गठन किया गया। जिसका पंजीयन सहकारी संस्थायें मध्यप्रदेश भोपाल द्वारा 12/01/1984 को किया गया। लघु वनोपज के संग्रहण हेतु प्रदेश की समस्त आदिम जाति सेवा सहकारी संस्थाओं एवम् प्राथमिक कृषि सहकारी संस्थाओं को संघ द्वारा सदस्य बनाया गया।''[15]

मध्यप्रदेश राज्य लघु वनोपज व्यापार एवम् विकास सहकारी संघ का गठन वनोपज संग्राहक श्रमिको की आर्थिक स्थिति सुधारने, उन्हें बिचौलियों के शोषण से मुक्ति दिलाने, श्रमिकों को सहकारी आंदोलन द्वारा लघु वनोपज के विकास व व्यापार में प्रवीण बनाने, श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक का समय पर भुगतान दिलवाने हेतु मुख्य रूप से किया गया था।

मध्यप्रदेश राज्य लघु वनोपज व्यापार एवम् विकास सहकारी संघ के गठन के बाद प्रदेश में तेंदूपत्ता, सालबीज, एवं हर्रा का संग्रहण सहकारी समितियों के माध्यम से किये जाने का कार्य किया गया। वर्ष 1984 में संघ द्वारा आबंटित क्षेत्रों में कार्यरत सहकारी समितियाँ (लैम्प्स/पैक्स) के माध्यम से तेंदूपत्ता का संग्रहण कार्य कर क्रेता को संग्रहण केन्द्रों पर पर ही प्रदान कराने की व्यवस्था की गई, किन्तु इस व्यवस्था में काफी कठिनाईयाँ आई और यह महसूस किया गया कि लैम्प्स/पैक्स सहकारी समितियाँ तेन्दूपत्ता जैसी संवेदनशील वनोपज की संग्रहण व्यवस्था के क्रियान्वयन हेतु सक्षम नहीं हैं। अतः अगले वर्ष 1985 में उन्हें केवल तेन्दूपत्ते संग्रहण के पर्यवेक्षण का कार्य सौंपा गया। इस समय यह व्यवस्था थी कि समितियों का अधिकृत प्रतिनिधि संग्रहण केन्द्रों में खरीदी के समय उपस्थित रहेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि प्रत्येक श्रमिक को उसके द्वारा लाई गई तेन्दूपत्ता की मात्रा का संग्रहण मूल्य का पूरा–पूरा पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। लैम्प्स/पैक्स सहकारी समितियों को यद्यपि पर्यवेक्षण का कार्य सौंपकर श्रमिकों को शोषण से मुक्त करना, सुनिश्चित करने की व्यवस्था की गई थी, किन्तु इन वर्षों में यह देखा गया कि सहकारी समितियाँ अपने अन्य कार्यकलापों में व्यस्त होने के कारण या तो अपने प्रतिनिधि, पर्यवेक्षण कार्य हेतु नहीं लगाये या अपने प्रतिनिधि लगाये भी तो इनके द्वारा सुचारू रूप से पर्यवेक्षण नहीं किया गया। जिससे वनोपज संग्रहण में श्रमिकों के शोषण होने की संभावना बनी रही।

इस तरह वनोपज संग्राहक श्रमिक वनोपज के व्यापारियों द्वारा शोषण का शिकार बने रहे। वर्ष 1984–1988 तक विभिन्न तरीको से सहकारी समितियों के माध्यम से तेंदूपत्ता आदि इकट्ठा करने का काम कराया जाता रहा, लेकिन मूल रूप से ठेकेदार इस व्यवस्था में सक्रिय रहे तथा श्रमिकों का शोषण जारी रहा।

''मध्यप्रदेश सरकार ने लघु वनोपज की नई नीति के तहत जून 1988 में अपने एक अन्य निर्णय द्वारा ऐसी व्यवस्था लागू करने का संकल्प किया। जिसके अंतर्गत तेन्दूपत्ते के संग्रहण कार्य में दलाल और बिचौलियों को पूर्णरूप से हटाया जाएगा साथ ही लघुवनोपज को संग्रहण करने वाले आदिवासी, हरिजन तथा ग्रामीणों को अपनी मजदूरी के रूप में प्राप्त होने वाली आय में उनकी हिस्सेदारी स्थापित हो जाएगी। इस कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से वनोपज संग्रहणकर्ताओ मे से सहकारी समितियों की गठन का निर्णय लिया है। इस नीति के क्रियान्वयक हेतु सहकारिता का त्रिस्तरीय ढांचा निर्धारित किया गया। पहला प्राथमिक स्तर पर केवल संग्रहणकर्ताओं की प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियाँ होगी। दूसरे स्तर पर जिला कलेक्टर की अध्यक्षता में जिला यूनियन बनायी जाएगी और तीसरे अंतिम शीर्ष स्तर पर मध्यप्रदेश राज्य लघु वनोपज व्यापार एवं विकास सहकारी संघ रहेगी। शासन की नीति के अनुसार समस्या राष्ट्रीयकृत लघुवनोपज के संग्रहण प्रोसेसिंग एवं विपणन कार्य प्राथमिक समितियों के माध्यम से कराया जाना प्रस्तावित है। 1989 से तेन्दूपत्ता, सालबीज एव हर्रे का भी दोहन नई नीति के अंतर्गत होगा।''[16]

तेन्दूपत्ता व्यापार के सहकारीकरण करने के निर्णय के तहत प्राथमिक स्तर पर गठित प्राथमिक वनोपज सहकारी समिति के सदस्य अब केवल वनोपज संग्राहक श्रमिक ही बन सकेंगे। सहकारी समिति के त्रिस्तरीय गठन के ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी निर्णय के उद्देश्य तेन्दूपत्ता संग्रहण कार्य से बिचौलियों एवं ठेकेदारों का पूर्णरूप से उन्मूलन, इस व्यवसाय में शामिल लाखों गरीब परिवारों को शोषण से मुक्ति दिलाकर उन्हें उनके श्रम का उचित मूल्य दिलाना, साथ ही छोटी वनोपज के संग्रहणकर्ता की वनोपज आय में भागीदारी भी स्थापित

करना, आदि रहे हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य स्तर पर वनोपज सहकारी समितियों के गठन का निर्णय लिया गया और इस प्रकार तेन्दूपत्ता, सालबीज, हर्रा एवं गोंद जैसी छोटी वनोपजों के संग्रहण की व्यवस्था प्राथमिक सहकारी समितियों के माध्यम से किया जाना प्रारम्भ हुआ। सरगुजा क्षेत्र में प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों की संस्था तीन स्तर पर गठित की गयी।

वर्तमान में सरगुजा जिले में 100 से अधिक लैम्प्स कार्यरत हैं, परन्तु समस्या यह है कि क्षेत्र में लैम्प्स केवल तेन्दूपत्ते के व्यापार में सक्रिय होकर कार्य करती है। अन्य लघु वनोपज सालबीज, हर्रा, तथा महुए के विपणन में लैम्प्स बहुत हल्के स्तर पर व्यापारिक गतिविधियों को संचालित करती है।

''इस प्रकार देश एवं प्रदेश के इतिहास में पहली बार मध्यप्रदेश शासन द्वारा वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों एवं पिछड़े वर्गों के हित वनक्षेत्रों में पायी जाने वाली लघुवनोपज के संग्रहण एवं विपणन काम में उनकी सही रूप मे भागीदारी स्थापित करने के सम्बन्ध मे क्रांतिकारी निर्णय लिया गया। उक्त निर्णय के सफल क्रियान्वयन हेतु प्रदेश में पायी जाने वाली राष्ट्रीयकृत लघुवनोपज के संग्रहण प्रोसेसिंग एवं विपणन इत्यादि का कार्य वन क्षेत्र में रहने वाले आदिवासियों एवं पिछड़े वर्गों के लोगों द्वारा गठित उनकी सहकारी समितियों के माध्यम से किया जा रहा है। लघुवनोपज के व्यापार से होने वाली आय में उनका सही और अधिकारपूर्ण हिस्सा मिल सके और सदियों से चले आ रहे उनके आर्थिक शोषण का यह द्वार बिचौलियों के लिए हमेशा के लिए बन्द हो जाए।''[17]

## वर्तमान चुनौतियाँ–

मध्यप्रदेश शासन ने वर्ष 1965 में तेन्दूपत्ता व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण किया। इसके पश्चात इस वर्ष 1989 में सरकार ने तेन्दूपत्ता का संग्रहण पूर्ण रूप से सहकारी समितियों को सौंपने का निर्णय लिया तथा इस नीति को आशातीत सफलता भी मिली है। इन प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों के गठन का प्रभाव वनोपज व्यवसाय में संलग्न श्रमिकों के जीवन स्तर पर पड़ा है।

वनोपज व्यवसाय के सहकारीकरण तथा समितियों के गठन से अनेक लाभ हुए हैं, परन्तु आज भी सरगुजा क्षेत्र में वनोपज संग्राहक श्रमिक वर्ग का शोषण हो रहा है, यद्यपि उसके रूप में परिवर्तन हो गया है। आज भी सरगुजा के वन क्षेत्रों में ठेकेदारो का अस्तित्व जीवित है। तेन्दूपत्ता व्यापार में संलग्न व्यापारी अभी भी श्रमिकों की सरलता का लाभ उठाते हैं तथा उनका विभिन्न प्रकार से शोषण करते हैं। वनोपज व्यापार में सहकारी समितियों के गठन के बाद श्रमिकों के शोषण के तरीकों में परिवर्तन आ गया है। सरगुजा क्षेत्र में अब वनोपज सहकारी समिति प्रबंधक, फड़ प्रभारी, मुंशी, वन विभाग के कर्मचारी ही संग्राहक श्रमिकों का शोषण करने लगे हैं। ज्यादातर श्रमिकों के अशिक्षित होने के कारण सहकारी समिति के सदस्य वनोपज संग्राहकों का शोषण करने से नहीं चूकते। सहकारी सदस्य श्रमिकों को कम पैसे देते हैं तथा श्रमिकों की अशिक्षा का लाभ उठाकर वनोपज संग्रहण कार्ड मे सदस्य वनोपज की कम प्रवृष्टि करते है, इसके अतिरिक्त कई बार उन्हें बेचे गए वनोपज का मूल्य ही नहीं मिल पाता। बोनस के भुगतान में भी वनोपज संग्राहकों को भुगतान कम दिए जाने का प्रयास किया जाता है। इस तरह श्रमिकों का शोषण तो हो रहा है, शोषक का रूप पूर्व की तुलना में बदल गया है। शोषण के इस चरण में श्रमिकों की क्षमतायें वहीं हैं, परन्तु सहकारी समितियों की विश्वसनीयता और वफादारी घटी है।

सरगुजा क्षेत्र मे अधिकांश वनोपज संग्राहकों के अशिक्षित होना भी उनके शोषण का एक मुख्य कारण है। ''अशिक्षित होने के कारण वे समिति के विधिवत सदस्य नहीं बनना चाहते। अशिक्षा के कारण उन्हें वनोपज का समुचित मूल्य नहीं मिलता, जागरूकता का अभाव है, अतः वनोपज व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी उनका शोषण होता है। श्रमिकों की गतिशीलता कम होना तथा व्यापारी की तुलना में इनसे तर्कशक्ति की कमी, इन सब कारणों की वजह से वनोपज व्यवसाय के सहकारीकरण का समुचित लाभ प्राप्त नहीं हो पाया है।''[18]

वर्तमान समय में क्षेत्र के वनोपज श्रमिक साहूकारो, ठेकेदारो, सहकारी बैंको, ग्रामीण बैंको, तथा राष्ट्रीयकृत बैंको का कर्जदार है, जिसका फायदा ठेकेदार उठाते है। अतः इन क्षेत्रो में ऋण का भी कारगर ढंग से नियंत्रण होना चाहिए। संस्थागत ऋण सामान्यतः केवल उत्पादन के लिए दिया जाता है। आदिवासी अपने गैर उत्पादन, विशेषकर सामाजिक आवश्यकताओं के लिए साहूकार पर ही निर्भर है।

आज आवश्यकता इस बात की है नवीन सहकारी नीति के अंतर्गत श्रमिकों को शोषण के चक्र से बचाने के लिए आवश्यक है कि समिति के सदस्यों पर पैनी नजर रखी जाए और समझदार तथा ईमानदार लोग तेन्दूपत्ता व्यवसाय में निगरानी का काम करें तथा ज्यादातर तेन्दूपत्ता श्रमिकों को समिति के सदस्य बनाया जाए साथ ही उन्हें शिक्षित करने का प्रयास भी किया जाए, तभी यह नीति पूरी तरह सफल होगी। अन्यथा शोषण का कुचक्र जारी रहेगा और क्षेत्र में वनोपज संग्रहण कार्य में संलग्न श्रमिकों को उनके श्रम का मूल्य नहीं मिल पाएगा।

## संदर्भ ग्रंथ–


1. शर्मा ब्रह्मदेव, ''आदिवासी विकास एक सैद्धान्तिक विवेचन'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वितीय संस्करण, 1982, पृष्ठ संख्या 91–92.
2. प्रसाद रघुवीर, ''झारखण्ड झनकार'' भारतीय सांस्कृतिक निधि (इनटैक), रायपुर, 2005, पृष्ठ संख्या 22.
3. नायडू, पी.आर., ''भारत के आदिवासी विकास की समस्यायें'', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या 146
4. कुमार प्रमिला, ''मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2000, पृष्ठ संख्या 142–143.
5. नायडू, पी.आर., ''भारत के आदिवासी विकास की समस्यायें'', पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 156
6. वही, पृष्ठ संख्या 156–157.
7. वही, पृष्ठ संख्या 157.
8. वही, पृष्ठ संख्या 157.
9. रिपोर्ट ऑफ दि सेड्यूल्ड एरिया एण्ड सेड्यूल्ड ट्राइब कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1961.
10. रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन ट्राइबल इकोनोमी इन फारेस्ट एरिया, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1967.
11. मध्यप्रदेश तेदूपत्ता (व्यापार एवं विनियमन) अधिनियम, 1964.
12. सेन, डी.पी. एवम् सेन वरूणा, मध्यप्रदेश फॉरेस्ट मेन्यूअल, दिलायर्स होम्स, इन्दौर, वर्ष 1993, पृष्ठ संख्या 162.
13. मध्यप्रदेश लघुवनोपज व्यापार विनियमन अधिनियमन 1969.
14. नायडू, पी.आर., ''भारत के आदिवासी विकास की समस्यायें'', पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 149.
15. वही, पृष्ठ संख्या 150.
16. वही, पृष्ठ संख्या 154.
17. वही, पृष्ठ संख्या 155–156.
18. प्राथमिक वनोपज सहकारी समितियों का अंकेक्षण, प्रतिवेदन पुस्तिका, मध्यप्रदेश राज्य लघु वनोपज व्यापार एवं विकास सहकारी संघ, भोपाल.

**अभिषेक अग्रवाल**
**शोध छात्र (इतिहास विभाग) गुरू घासीदास (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय , बिलासपुर (छ.ग.)**

LBP PUBLICATION